द्यावापृथिवी : स्वरूपविमर्श

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (वेदविज्ञान)
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर (राज.)

दृश्यमान यह सृष्टि द्यावापृथिवी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, अतएव द्यावापृथिवी के स्वरूपपरिज्ञान के लिए वेदविज्ञानवेत्ताओं द्वारा पर्याप्त चिन्तन किया गया है। 'द्यौ' क्या है ? इस विषय में दो मत प्रचलित थे, ऐसा पं. मधुसूदन ओझा महोदय ने अहोरात्रवाद में प्रतिपादित किया है। वहाँ दिखलाये गये प्रथम मत के अनुसार द्यौ व्योम (आकाश) ही है और वह व्योम (आकाश) सूर्य चन्द्र तारे ग्रह आदि से परिपूर्ण अवयवों (स्थानों) वाला दिखायी देता है। वहाँ उनके द्योतमान (प्रकाशमान) होने से 'द्यौ' संज्ञा होती है। वह इस दृष्टि से सान्वर्थ (अर्थानुकूल या सार्थक) भी प्रतीत होती है। इत मत का प्रकारान्तर से प्रतिपादन शतपथ ब्राह्मण में किया गया है, वहाँ कहा गया है :-

यह पृथ्वी एकमात्र इतने बहुल (अत्यधिक) आयाम वाली है, कि द्यौ तथा अन्तरिक्ष ये दोनों इसके प्रति उद्यामिनी हैं अर्थात् इतने ही आयाम को पाकर इस पृथ्वी को आलम्बन प्रदान करने वाले हैं। जिस प्रकार यह अन्तरिक्ष लेला (अग्निजिह्वा) से प्रतीयमान होता है, वैसे ही द्यौ भी उसी से प्रतीयमान होता है। (अन्तरिक्ष का कोई स्वरूप नहीं है, रिक्त मात्र होने से उसकी प्रतीयमानता केवल पृथ्वी एवं आकाश के होने से ही है, किन्तु द्यौ का अपना स्वरूप है, पृथ्वी की भाँति। अतः उसकी प्रतीयमानता अन्तरिक्ष की प्रतीयमानता से भिन्न है।) (शतपथब्राह्मण-2/15/16)

यहाँ कहा गया है किबहुत बड़े परिमाण वाली यह पृथ्वी है। आकाश भी बहुत बड़े परिमाण वाला है। उसके बहुल परिमाण से ही यह पृथ्वी भी बहुल परिमाण वाली है। अर्थात् जितने परिमाण में यह आकाश दिखायी देता है उतने ही परिमाण में यह पृथ्वी मानी जाती है। इस प्रकार परिमाणगत आनन्त्य के कारण दोनों में बहुलत्व उपपन्न होता है। द्यौ और अन्तरिक्ष ये दोनों ही इस पृथ्वी के प्रति उद्याम वाले हैं। उद्याम उसे कहते हैं जो उत्थान पर अधिकार रखता है। इस प्रकार पृथ्वी के प्रति इन दोनों का उद्याम (उत्थानाधिकार) लक्षित होता है। ये दोनों द्यौ एवं अन्तरिक्ष किस प्रकार के स्वरूप वाले हैं, इस विषय में यहाँ निर्देश किया गया है कि लेला अर्थात् अग्निजिह्वा से ही अन्तरिक्ष का अस्तित्व है तथा अग्निजिह्वा से ही द्यौ का अस्तित्व है। लेला अग्निजिह्वा को कहा गया है। उससे ही इन दोनों का निरन्तर साहचर्य बना रहता है, वही द्यौ के द्योतनशील होने में प्रमाण है। अग्नि के बिना द्योतनशील होना सम्भव नहीं है, अतएव अन्तरिक्ष से ऊपर द्योतमान होने वाला व्योम (आकाश) ही द्यौ है, ऐसा प्रमाणित होता है।

शतपथ ब्राह्मण में अन्य स्थान पर यह भी स्पष्ट किया गया है, कि द्यौ का क्या लक्षण है तथा पृथ्वी का क्या लक्षण है। उनमें सूर्य चन्द्र तारे आदि के समूह द्यौ के लक्षण में प्रामाण्य को वहन करते हैं। वैसे ही अप् अग्नि प्रजा औषधि एवं वन ये पाँच पृथ्वी के लक्षण में प्रामाण्य को वहन करते हैं। इससे द्यौ सूर्य चन्द्र तारा आदि के समूह वाली है तथा पृथ्वी जल अग्नि जीव वृक्ष एवं वनों वाली है यह प्रमाणित होता है। कहा है -

'वे सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रों के समूह जिसके नीचे की ओर लक्षण रूप में दिखायी पड़ते हैं, उसे ही मैं 'द्यौ' कहता हूँ। पृथ्वी उसको कहता हूँ जिसके ऊपर की ओर जल अग्नि जीवजन्तु औषधियाँ (वृक्ष सम्पदा) एवं वन दिखायी देते हैं।' (श.1/5/2)

उपर्युक्त प्रमाण से सिद्ध होता है कि जिसके पृष्ठभाग पर सूर्य चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र एवं तारे आश्रित हैं, वही द्यौ कही जाती है। और जिसके पृष्ठभाग पर जल, अग्नि, प्रजा, ओषध्यिाँ एवं वन आश्रय प्राप्त करते हैं वह पृथ्वी कही जाती है। यह दोनों में स्वरूपगत भेद है। सूर्य द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों का योजक (सम्बन्ध बनाये रखने वाला) है। दिन में द्यौ सेआकृष्ट सूर्य ही गति करता है। सूर्य की गति के कारण द्यौ अर्धवृत्ताकार प्रतीत होता है तथा पृथ्वी समवृत्ताकार प्रतीत होती है। जैसा कि वहीं शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है :-

यह सूर्य द्युलोक के अभिमुख गति करना आरम्भ करता है, तो उसे सूर्य का उदय (उत्कर्ष) कहते हैं। जब पृथ्वी के अभिमुख गति का आरम्भ करता है, तो सूर्य का अस्त (अपकर्ष) कहते हैं। यही कारण है कि द्यौ हमें अर्धवृत्ताकार दिखायी देता है तथा पृथ्वी दर्पण की भाँति समतल दिखायी देती है। (शतपथ ब्राह्मण - 1/5/5/6)

उपर्युक्त कथन के आधार पर दूसरा स्वरूपभेद दोनों की आकृति के दिखायी देने में स्पष्ट लक्षित होता है। जैसा कि कहा है, यह द्यौ अर्धवृत्ताकार है, जबकि यह पृथ्वी दर्पणतलसदृश आकार वाली है। दर्श दर्पण को कहा गया है तथा उसके तल का अनुकरण करती है, अतः वैसी याने उसके समान कही गयी है। समा का अर्थ है समत्व को प्राप्त अर्थात् समतल भाव को प्राप्त। पृथ्वी द्यौ की भाँति अर्धवृत्ताकार नहीं भासित होती।

दूसरा मत यह है, कि यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड दो कपालों में विभक्त है। इनमें ऊपर स्थित कपाल ब्रह्माण्ड के आधे भाग के रूप में दिखायी देने वाला द्यौ है। नीचे स्थित कपाल ब्रह्माण्ड के शेष आधे भाग के रूप में दिखायी देने वाली पृथ्वी है। इस मत का प्रस्तुतीकरण पं. मधुसूदन ओझा महोदय ने अहोरात्रवाद में निम्नानुसार किया है:-

जितना परिमाण वाला क्षेत्र सूर्य से प्रकाशमान दिखायी देता है, वही ब्रह्माण्ड है। सूर्य के द्वारा आधे आधे भाग में विभक्त किया गया होने से ऊपर का आधा भाग द्यौ कहा जाता है। शेष आधा भाग जो रज (धूलिकणों) से घटित है वह पृथ्वी कहा गया है। (अहोरात्रवाद - 3/4)

यहाँ ब्रह्माण्ड को दो कपाल वाला कहा गया है। सूर्य ही इस ब्रह्माण्ड में द्यौ एवं पृथिवी का विभाजक (पृथक् करने वाला) है। सूर्य से भासित ऊर्ध्व कपाल द्यौ कहा गया है तथा सूर्य से भासित अधः कपाल ही पृथ्वी कहा गया है। अर्थात् सूर्य के द्वारा आधे आधे कपाल रूप में ये दोनों द्यौ एवं पृथ्वी आभासित होते हैं। इस विषय में वाजसनेयी श्रुति प्रमाण है। वहाँ ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सन्दर्भ में सूर्योत्पत्ति के पूर्व सम्पूर्ण कपालद्वयात्मक ब्रह्माण्ड भाग का पृथ्वी होना भी कहा गया है -

उसी पुरुष प्रजापति ब्रह्मा ने सर्वप्रथम त्रयी विद्या को उत्पन्न किया। वही इसकी प्रतिष्ठा बनी। उस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होकर उसने तप किया। तत्पश्चात् सर्वप्रथम जल की सृष्टि की। तत्पश्चात् वह इस त्रयी विद्या के साथ जल में प्रवेश कर गया। फिर अण्डरूप में हो गया। तब त्रयी विद्या द्वारा स्वयं ब्रह्मा ही प्रथम उत्पन्न हुआ। यह अग्नि का जो मुख है, वही ब्रह्म है। जो अन्दर गर्म है, वह अग्नि है। जो कपाल था, वह पृथ्वी हो गयी। उसने उस को पीड़ित करते हुए जल में गहरा वेध किया। उससे जो उत्कृष्ट रस क्षरित हुआ, वह कूर्म हो गया। (वाज.सं. - 6/1/1)

वाजसनेयी संहिता के उक्त वचन से पृथ्वी की कपालरूपता प्रमाणित होती है। सूर्योत्पत्ति के पश्चात् जो 'द्यौ' प्रतीयमान हुई, वह कौन थी, इस विषय में पं. ओझा महोदय लिखते हैं :-

रस ही कूर्म है। जहाँ तक रस है वहाँ तक आत्मा है। वही यह कूर्म इन लोकों में अवस्थित है। उस कूर्म का जो नीचे का कपाल है, वह इहलोक (पृथ्वी लोक) है। वह प्रतिष्ठित की भाँति प्रतीत होता है। यह लोक भी प्रतिष्ठित के समान ही है। और जो ऊपर का कपाल है, वह द्यौ है। वह व्यवगृहीतान्त की भाँति प्रतीत होता है। व्यवगृहीतान्त द्यौ से पृथ्वी के बीच का जो भाग है, वह अन्तरिक्ष कहलाता है। (महर्षिकुलवैभवम्/पृ.2)

यहाँ द्यौ को व्यवगृहीतान्त कहा गया है। वृष्टिरहित स्थान को व्यवगृहीत कहते हैं। इस प्रकार - ब्रह्माण्ड के अर्थात् दृष्टिभूत त्रैलोक्य के जिस भाग में वर्षा नहीं होती या नहीं सम्पन्न होती, वह भाग द्यौः संज्ञा को प्राप्त करता है। वह अन्तरिक्ष से ऊपर ही है, क्योंकि अन्तरिक्ष द्यौ एवं पृथ्वी का मध्य भाग है अर्थात् मध्य में स्थित है। पृथ्वी के विषय में जो कहा गया है, कि वह प्रतिष्ठित की भाँति प्रतीत होती है, इस कथन के माध्यम से पृथ्वी की प्रतीयमान स्थिरता को बतलाया गया है।

(शेष अगले अंक में)